ध्वनि विज्ञान

➢ ध्वनि-विज्ञान की व्याख्या :-

ध्वनि-विज्ञान भाषा विज्ञान का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। वह भाषा की विभिन्न ध्वनियों का ठीक-ठीक ज्ञान कराता है और उसके ठीक उच्चारण की शिक्षा देता है। इसके द्वारा मनुष्य का उच्चारण संबंधी ज्ञान पूर्ण होता है। विश्व की विभिन्न भाषाओं को सीखने में भी यह अत्यन्त उपयोगी सिध्द होता है। ध्वनियों का वर्गीकरण, विश्लेषण और वर्णन यह तीन मुख्य बातें इनमें समझायी जाती है। इतना ही नहीं तो यह प्रत्येक भाषा के शुद्ध उच्चारण और शुद्ध लेखन में सहायक होता है। उसी प्रकार शुद्ध और स्पष्ट वैज्ञानिक संकेतों के निर्माण में सहायक होता है। प्राचीन और नवीन ध्वनियों के क्रमिक विकास का इतिहास भी यह स्पष्ट करता है। ध्वनि-विज्ञान ध्वनि-परिवर्तन एवं ध्वनि-विकास और उसके कारणों को स्पष्ट करता है। इसके द्वारा विश्व की भाषाओं में हुए परिवर्तनों का इतिहास बताया जाता है। उसी तरह विभिन्न भाषाओं के पारस्परिक संबंध के द्वारा विश्वबंधुत्व और विश्व-संस्कृति की स्थापना में सहयोग देता है। यह तो ध्वनियों के परिवर्तन के साथ मानव की प्रगति या अवनति का इतिहास बताता है। इसका अधिक से अधिक संबंध उच्चरित ध्वनियों से होता है। यह एक ऐसा विज्ञान है जो शुद्ध उच्चारण की शिक्षा के द्वारा मानव को अधिक सुसंस्कृत और सुसभ्य बनाता है और भाषाशास्त्रियों, संगीतज्ञों, कलाकारों और वक्ताओं के लिए अत्यंत उपयोगी साधन के रूप में सिध्द होता है।

➢ भाषाध्वनि की परिभाषा :-

ध्वनि शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। जैसे - सुर, ताल, आवाज, घोष, प्रतिघोष, शब्द, गडगडाहट आदि। किसी भी वस्तु से किसी तरह की कुछ आवाज हो जो सुनी जा सके उसे `ध्वनि` कहते हैं। मुँह से निकली आवाज भी ध्वनि कहलाती है।

भाषा ध्वनि उसे कहा जा सकता है जिसका उच्चारण मानव के ध्वनियंत्र द्वारा उच्चारण अवयव की सहायता से किया जाता है। जिनका श्रवण कर विशिष्ट अर्थग्रहण किया जाता है।

➢ ध्वनियंत्र (वाग्-यंत्र) और उसकी कार्यप्रणाली (उच्चारण प्रक्रिया) :-

ध्वनि-विज्ञान में ध्वनि का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है। ध्वनि का एकमात्र साधन वाग्-यंत्र है। वाग्-यंत्र का सूक्ष्मता से ज्ञान ध्वनि-विज्ञान की शिक्षा के लिए अनिवार्य है। ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है ? किन स्थानों से होकर जाती है, कहाँ रूकती है, कहाँ संघर्ष करती है, कहाँ और कैसे घोष और अघोष का रूप धारण करती हैं आदि के स्पष्ट ज्ञान के लिए वागिन्द्रिय या वाग्-यंत्र के प्रत्येक अवयव का ज्ञान अनिवार्य है। इसके आधार पर ही ध्वनि शिक्षा पूर्ण हो सकती है। जिन अवयवों या अंगों की सहायता से भाषा-ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है, उन्हें वाग्-यंत्र, ध्वनियंत्र या उच्चारण-अवयव कहा जाता है।

चित्र - ध्वनियंत्र
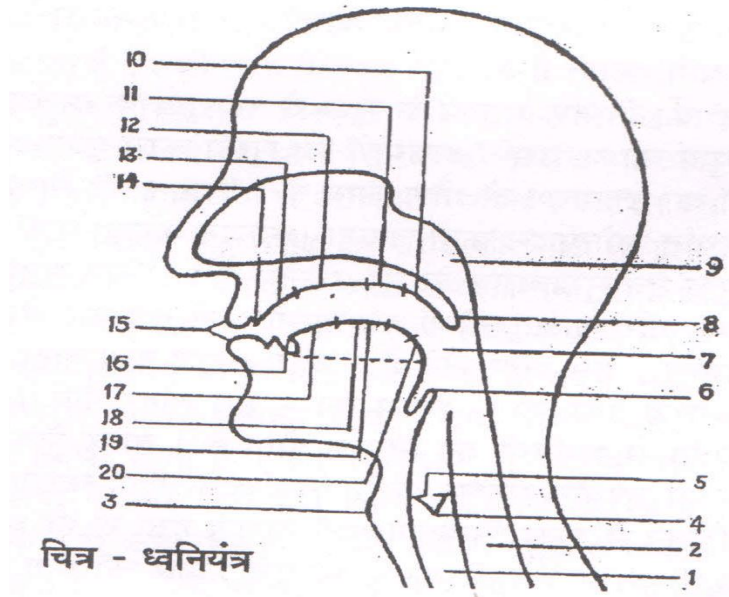
इन ध्वनियों के उत्पादन के लिए आवश्यक अंगों का संक्षिप्त वर्णन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. **फेफडे (Lungs)** :- ध्वनि उत्पादन में फेफड़ों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य के वक्षःस्थल के दोनों ओर फेफड़े धौंकनी का काम करते है। उच्चारण के लिए आवश्यक वायु इनसे ही प्राप्त होती है। अन्दर से आनेवाली दूषित वायु ही ध्वनि या भाषा के लिए प्राण या जीवन है।
2. **श्वास नलिका (Wind Pipe)** :- श्वास नलिका बाहर की वायु को फेफड़ों तक पहुँचाती है और अन्दर की दूषित वायु को बाहर लाने का काम करती है। इस बाहर आने वाली वायु से ही ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।
3. **भोजन नलिका (Gullet)** :- श्वास नलिका के समानान्तर दूसरी नलिका भोजन नलिका है। इसे ग्रसनी भी कहते हैं, जो भोजन को सीधे अमाशय तक पहुँचाती है। ये दोनों नलियाँ एक पतली दीवार के द्वारा पृथक होती है। गलबल के बाद भोजन नलिका या ग्रसनी का श्वसन क्रिया से संबंध नहीं है और श्वास नलिका का भोजन क्रिया से संबंध नहीं है। अतएव भोजन का छोटा कण भी श्वास नलिका में यदि पहुँचता है, तो हिचकी या खांसी आ जाती है और अन्दर की वायु उस कण को मुँह या नाक के मार्ग से बाहर निकाल देती है।
4. **अभिकाकल (Epiglottis)** :- भोजन-नलिका के विवर पर श्वास-नलिका की ओर झुकी हुई एक छोटी सी जीभ है जो अभिकाकल या स्वर यंत्र-मुख आवरण कहलाती है। स्वर तंत्रियों या स्वर ओष्ठों के बीच में जो खुला अंश रहता है, उसको काकल (Glottis) कहते हैं।
5. **स्वरयंत्र (Larynx) स्वरयंत्र - मुख, स्वरयंत्री (Vocal Cards)** :- अभिकाकल से कुछ नीचे श्वास नलिका के ऊपरी भाग में स्वर यंत्र नामक अवयव होता है। ध्वनि उत्पन्न करनेवाला यह प्रधान अवयव है। इसके अन्दर ओठों के आकार की दो पतली झिल्लियाँ होती हैं। इन्हें स्वरतंत्रियाँ कहा जाता है।
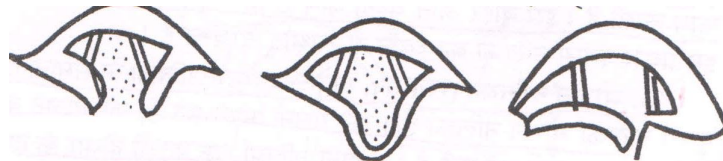
6. **गलबिल (Pharynx, फेरिंक्स)** :- अभिकाकल के ऊपर और नासाविवर के नीचे तथा जिव्हामूल के पीछे की ओर जो खाली स्थान है, उसे कण्ठबिल, कण्ठ, कण्ठमार्ग या उपालिजिव्हा कहते हैं।
7. **अलिजिव्हा या कौवा (Uvula, युव्युला)** :- जहाँ से नासाविवर और मुख-विवर का रास्ता अलग होता है, उस स्थान पर छोटी जीभ की आकृति का एक गोल मांस-पिण्ड होता है। मुख खोलने पर यह जिव्हा-पश्च के समीप स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इसको अलिजिव्हा या कौवा कहते हैं।
8. **नासिका विवर (Nasal Cavity, नेज़ल केविटी)** :- यह गलबिल से प्रारंभ होकर नासिका के अग्रभाग तक फैला हुआ है। इसके अन्दर एक विवर है। इस विवर से वायु के निर्गत होने पर अनुनासिक या नासिक्य ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।
9. **कोमल तालु (Soft Plate)** :- गलबिल की ओर से आगे आने पर कोमल तालु मिलता है। यह कठोर तालु की समाप्ति से लेकर गलबिल तक फैला हुआ है। यह कोमल मांस-खण्ड के तुल्य है।
10. **मूर्धा (Cerebrum, सेरिब्रम)** :- यह कठोर तालु का पीछे की ओर का अन्तिम भाग है। पाश्चात्य भाषाशास्त्री इसको कठोर तालु का ही एक अंश मानते हैं और इसकी पृथक सत्ता नहीं मानते हैं। `ट` वर्गीय ध्वनियाँ इस स्थान से उच्चरित होती हैं।
11. **कठोर तालु (Hard Palate)** :- कोमल तालु की ओर से आगे बढ़ने पर कठोर अस्थिवाला भाग मिलता है। इसको कठोर तालु कहते हैं।
12. **वर्त्स (Alveolus, आलवीअलस)** :- यह दातों के मूल से लेकर कठोर तालु के प्रारंभ तक का भाग है। दाँतों की जड़ में यह उभरा हुआ खुरदरा भाग `वर्त्स` कहलाता है।
13. **दन्त (Teeth)** :- सामने के ऊपर के दो दाँत ध्वनि-उच्चारण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नीचे के दाँतों का ध्वनि विज्ञान में बहुत कम उपयोग होता है। ऊपर के दाँत ओष्ठ से या जिव्हा की नोक से मिलकर विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में सहायक होते हैं।
14. **ओष्ठ (Lips)**:- ऊपर और नीचे के ओष्ठों में से ऊपर के ओष्ठों की अपेक्षा नीचे का ओष्ठ अधिक क्रियाशील है।
15. **जीभ (Tongue)** :- ध्वनियों के उच्चारण में जिव्हा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उच्चारक है। केवल `प` वर्ग की ध्वनियों को छोड़कर अन्य सभी ध्वनियों में यह उच्चारक का कार्य करती है। मुख-विवर में निचले भाग में जिव्हा है। अधिकांश भाषाओं की स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ इसकी सहायता में बोली जाती है।

➢ **ध्वनि वर्गीकरण के आधार :-**

1) स्थान के आधार पर ध्वनि वर्गीकरण :-

ध्वनि निर्माण में जहाँ वायु बाधित होता है वह स्थान होता है। ओठों से लेकर स्वरयंत्र तक अनेक स्थान हैं। प्रत्येक ध्वनि उच्चारण में अलग-अलग स्थानों का प्रयोग किसी एक ही स्थान से प्रत्येक ध्वनि उच्चरित नहीं होती। इन स्थानों का परिचय हम बाहर से भीतर की ओर संक्षेप में देख सकते हैं।

1) ओष्ठ 2) दाँत 3) वर्त्स 4) कठोर तालु 5) मूर्द्धा 6) कोमल तालु 7) अलि-जिव्हा 8) उपालि जिव्हा 9) स्वरयंत्र।

उपर्युक्त स्थानों से उच्चारित ध्वनियाँ क्रमशः ओष्ठ्य, दन्त, वर्त्स्य, तालव्य, मूर्धन्य, कंठ्य, काकल्य (अलिजिव्हा) उपालिजिव्हीय, स्वरयंत्रमुखी कहलाती है।

2) प्रयत्न के आधार पर ध्वनि वर्गीकरण :-

ध्वनियों के उच्चारण में हवा को रोककर या अन्य प्रकारों से विकृत करना पड़ता है। इसे ही प्रयत्न कहते हैं। प्रत्येक ध्वनि के उच्चारण में किसी न किसी प्रकार का प्रयत्न करना पड़ता है। प्रयत्न के दो भेद है।

1) आभ्यन्तर 2) बाह्य।

1) आभ्यन्तर :- मुँह के भीतर (ओष्ठ से कण्ठ तक) जो प्रयत्न किये जाते हैं, उन्हें आभ्यन्तर कहते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न में चार प्रयत्न माने जाते हैं। अ) स्पृष्ट ब) ईष्टत्स्पृष्ट क) विवृत ङ) संवृत

अ) स्पष्ट - स्पष्ट शब्द स्पर्शों के लिये व्यवहृत है। क, च, ट, त, प वर्ग स्पृष्ट है।

ब) ईषत्स्पृष्ठ - इसका अर्थ है थोड़ा सा स्पर्श किया गया। कुछ ध्वनियों के उच्चारण जिव्हा किसी स्थान को पूर्ण रूप से स्पर्श नहीं करती बल्कि हल्का-सा स्पर्श होता है। इसे ही ईषत्स्पृष्ट कहते हैं। इसे ही अन्तस्थ कहते हैं। इसके अर्थ हैं ऐसी ध्वनियाँ जो स्वर और व्यंजन के बीच में होती हैं। जैसे - य, र, ल।

क) विवृत - इसका अर्थ है खुला हुआ। स्वरों के उच्चारण के समय स्थान का स्पर्श नहीं होता बल्कि मुँह बिल्कुल खुला रहता है। जैसे - अ, आ आदि।

ङ) संवृत - इस का अर्थ है बन्द। जिन ध्वनियों के उच्चारण में मुँह बंद हो जाता है उसे संवत् कहते हैं।

2) बाह्य प्रयत्न :- इसका संबंध स्वरतंत्रियों से माना जाता है। प्राचीन ग्रंथों में इसके ग्यारह भेद माने जाते हैं।

1) विवर 2) संवार 3) श्वास 4) नाद 5) घोष 6) अघोष 7) अल्पप्राण 8) महाप्राण 9) उदात्त

10) अनुदात्त 11) स्वरित।

➢ **स्वरों का वर्गीकरण :-**

हमने पीछे देखा कि स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में मुख विवर में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। सामान्यतः समस्त स्वर सघोष होते हैं। परंतु ऐसा होने पर भी सारे स्वर अ, आ, उ, ए, ऐ एक समान नहीं होते। इनमें कुछ कारणों से भेद होता है। अर्थात् भाषा में जितने स्वर होते हैं, उनके उच्चारण में उतने ही प्रकार के स्वरूप मुख-विवर को देने पड़ते हैं। यह स्वरूप उच्चारण स्थान जैसे जिव्हा, कौवा, ओष्ठ की स्थिति आदि पर निर्भर करता है। इन्हीं कारणों के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण किया जाता है। स्वरों का वर्गीकरण निम्नांकित आधारों पर किया जा सकता है -

1) जिव्हा के भागों की दृष्टि से :-

किसी भी स्वर के उच्चारण में जिव्हा करण का कार्य करती है। जिव्हा के हम तीन भाग अग्र, मध्य और पश्च कर सकते हैं। किसी स्वर के उच्चारण में जिव्हा का कभी अग्र भाग महत्त्वपूर्ण कार्य

करता है तो कभी मध्य और किसी स्वर के उच्चारण में जिव्हा का पश्च भाग कार्य करता है। इस दृष्टि से स्वरों को तीन भागों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

- **i)** **अग्रस्वर** :- यदि जिव्हा का अग्रभाग स्वर उच्चारण करण का कार्य करता है तो यह स्वर अग्रस्वर कहलाते हैं, जैसे हिंदी में - इ, ई, ए, ऐ।
- **ii)** **मध्यस्वर** :- यदि किसी स्वर में जिव्हा का मध्यभाग करण का कार्य करता है तो यह `मध्यस्वर` कहलाते हैं। जैसे हिंदी में अ, आ।
- **iii)** **पश्च स्वर** :- जिन स्वरों के उच्चारण में जिव्हा का पश्च भाग कार्य करता है तो वे स्वर `पश्च` स्वर कहलाते हैं। जैसे हिंदी में उ, ऊ, ओ, औ।

2) जिव्हा के ऊँचाई की दृष्टि से :-

स्वरों के उच्चारण में जिव्हा का भाग (अग्र, मध्य या पश्च) ऊपर तालु के पास चला जाता है तो कभी नीचे की ओर कभी आधा ऊपर उठता है। जिव्हा के ऊपर नीचे अर्थात् जिव्हा की ऊँचाई की दृष्टि से स्वरों के चार भेद होते हैं।

i) संवृत्त ii) अर्द्ध संवृत्त iii) विवृत iv) अर्धविवृत्त

- **i)** **संवृत्त** :- जब जिव्हा का विशिष्ट भाग बहुत ऊपर उठता है तब मुख्य विवर अत्यन्त संकरा अर्थात् संवृत्त हो जाता है तो उच्चारित ध्वनियाँ संवृत्त स्वर कहलाती हैं। जैसे - इ, ई, उ, ऊ।
- **ii)** **अर्धसंवृत्त** :- जब जिव्हा का विशिष्ट भाग संवृत्त स्थिति से कम ऊपर उठता है तब मुख विवर का भाग अर्द्धसंकरा अर्थात् अर्धसंवृत्त हो जाता है तो उच्चारित ध्वनियाँ जैसे - ए, ओ।
- **iii)** **विवृत्त** :- जब जिव्हा और तालु के बीच की दूरी अधिक होती है अर्थात् जिव्हा की ऊँचाई सब से कम होती है, तब उच्चारित ध्वनियाँ विवृत्त कहलाती हैं। जैसे - आ।
- **iv)** **अर्धविवृत्त** :- जब जिव्हा और तालु के बीच की दूरी विवृत्त स्थिति से कम होती है तब उच्चारित ध्वनियाँ अर्धविवृत्त स्वर कहलाती हैं। जैसे - ऐ, औ।

3) ओष्ठों की स्थिति के आधार पर :-

ध्वनियों के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति का बड़ा महत्त्व है। ओष्ठों की स्थितियों के आधार पर स्वरों को निम्नांकित वर्ग में बाँटा जा सकता है।

- **i)** **अवर्तुल** :- जिन स्वरों के उच्चारण में ओठों की स्थिति स्वाभाविक रूप से खुली रहती है, उन स्वरों को अवर्तुल स्वर कहते हैं। जैसे - इ, ई, ए, ऐ।
- **ii)** **वर्तुल** :- जिन स्वरों के उच्चारण में ओठों की स्थिति वर्तुलाकार अर्थात् गोलाकार हो जाती है। इस स्थिति में उच्चारित स्वरों का वर्तुलाकार स्वर कहते हैं। जैसे - उ, ऊ, ओ, औ।
- **iii)** **अर्धवर्तुल** :- जिन स्वरों के उच्चारण में ओठों की स्थिति अर्धवर्तुलाकार हो जाती है। उन स्वरों को अर्धवर्तुलाकार स्वर कहते हैं। जैसे - आ।

4) मात्रा के आधार पर :-

मात्रा का अर्थ यहाँ काल अर्थात् समय से है। अर्थात् सभी स्वरों के उच्चारण में एक सा समय नहीं लगता। किसी स्वर के उच्चारण में थोड़ा समय लगता है तो किसी स्वर के उच्चारण में अधिक समय लगता है। उसे ही मात्रा कहते हैं। मात्रा के आधार पर स्वरों के मुख्य दो भेद होते हैं।

i) ऱ्हस्व ii) दीर्घ। संस्कृत में तीसरा `प्लुत` भी है।

i) **ऱ्हस्व** :- जिन स्वरों के उच्चारण में कम समय लगता है उन्हें ऱ्हस्व स्वर कहते हैं। जैसे - अ, इ, उ।

ii) **दीर्घ स्वर** :- जिन स्वरों के उच्चारण में अधिक समय लगता है उन्हें दीर्घ स्वर कहते हैं। जैसे - आ, ई, ऊ, ऐ आदि।

5) कोमल तालु और कौवे की स्थिति के आधार पर :-

ये दोनों कभी नासिका मार्ग को रोककर हवा को केवल मुँह से निकलने को बाध्य करते हैं और कभी बीच में रहते हैं - ऐसी स्थिति में कुछ वायु मुख से निकलती है तो कुछ नासिका द्वार से निकलती इस आधार पर उच्चारित स्वरों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। i) मौखिक स्वर, ii) नासिक्य स्वर।

i) **मौखिक स्वर** :- मुख से जब वायु निकलती है तो उच्चरित स्वरों को मौखिक स्वर कहते हैं। जैसे - अ, आ, इ, ई आदि।

ii) **नासिक्य स्वर** :- जब वायु नासिका द्वार से निकलती है तब उच्चारितस्वर नासिक्य स्वर कहलाते हैं। जैसे अ, उ, ऊ, ए आदि।

6) स्वर तंत्रियों की स्थिति के आधार पर :-

स्वर-तंत्रियों की स्थिति के आधार पर स्वरों के मुख्य दो भेद होते हैं। i) अघोष, ii) घोष।

i) **अघोष** :- जब स्वरों के उच्चारण में स्वर तंत्रियाँ निष्क्रिय पड़ी रहती हैं तब उच्चारित ध्वनियाँ अघोष स्वर कहलाती हैं।

ii) **घोष** :- जब स्वरों के उच्चारण में स्वर तंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट होती हैं तब उच्चारित ध्वनियाँ घोष कहलाती हैं। वैसे हिंदी के सभी स्वर घोष स्वर नहीं है।

7) जिव्हा पेशियों की स्थिति :-

जिव्हा पेशियों की स्थिति के आधार पर स्वरों के दो भेद किए जा सकते हैं। i) शिथिल और, ii) कठोर।

i) **शिथिल** :- जिन स्वरों के उच्चारण में जब जिव्हा की पेशियों में कम तनाव होता है, तब शिथिल स्वरों का उच्चारण होता है। जैसे - इ, ड आदि।

ii) **कठोर** :- जिन स्वरों के उच्चारण में जिव्हा की पेशियों में अधिक तनाव होता है, तब कठोर स्वर का उच्चारण होता है। जैसे ई, ऊ आदि।

8) मूल एवं संयुक्त स्वर के आधार पर :-

कुछ स्वर मूल स्वर होते हैं और कुछ स्वर संयुक्त स्वर होते हैं। जिन स्वरों के उच्चारण में जिव्हा स्थिर रहती है, या एक ही स्थान पर रहती है उन स्वरों को मूल स्वर कहते हैं। इसके विपरित जिन

स्वरों के उच्चारण में जिव्हा जिन स्वरों के उच्चारण में जिव्हा एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती है तब वे स्वर संयुक्त स्वर कहलाते हैं। जैसे अए (ऐ), अओ (ओ) आदि इसी प्रकार के स्वर हैं।

➢ व्यंजनों का वर्गीकरण :-

व्यंजनों का वर्गीकरण निम्नांकित आधारों पर किया जा सकता है।

1) प्रयत्न के आधार पर :-

व्यंजनों के उच्चारण में ध्वनियंत्र के विभिन्न अवयवों को अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते हैं। अतः हम प्रयत्न के आधार पर व्यंजन को निम्नांकित भागों में बाँट सकते हैं।

● **स्पर्श** :- स्पर्श का अर्थ है - `छूना`। अर्थात् ध्वनि उच्चारण के उच्चारण में एक उच्चारण अवयव दूसरे उच्चारण का स्पर्श करता है। स्पर्श के उच्चारण में तीन चरण होते हैं। पहले चरण में वायु भीतर से स्पर्श स्थान तक आती है, दूसरे चरण में दो उच्चारण अवयव एक दूसरे का स्पर्श करके भीतर से आती हवा को रोक देते हैं। तथा तीसरे चरण में दोनों उच्चारण अवयव एक दूसरे से दूर हट जाते हैं और हवा बाहर निकल जाती है। इस से उत्पन्न व्यंजन स्पर्शी व्यंजन कहलाते हैं। स्पर्श व्यंजन दो प्रकार के होते हैं। 1) स्फोटित स्पर्श, 2) अस्फोटित स्पर्श।

● **स्फोटित स्पर्श** :- जिस में तीसरा चरण होता है। इसके अन्त में स्फोट होता है। अर्थात उच्चारण तीसरे चरण के आरंभ में सुनाई पड़ता है।

● **अस्फोटित स्पर्श** :- अस्फोटित स्पर्श ध्वनियों में केवल पहली और दूसरी स्थिति होती है। अर्थात् इस में ध्वनि पहले चरण के अन्त में सुनाई पड़ती है। हिंदी के स्पर्शी व्यंजन - क, ख, ग, घ, त, थ, द, ध, ट, ठ, ड, ढ, प, फ, ब, भ आदि हैं।

● **संघर्षी** :- जिन व्यंजनों के उच्चारण में दो उच्चारण अवयव एक दूसरे के इतने निकट चले जाते हैं कि भीतर से आती हुई हवा दोनों अवयव के बीच से घर्षण या संघर्ष करती हुई निकलती है। इसी कारण इन्हें संघर्षी व्यंजन कहते हैं। हिंदी में स, श, फ, व, ज, ख, ग आदि इसी प्रकार के व्यंजन है।

● **स्पर्शी संघर्षी** :- इन ध्वनियों के उच्चारण में स्पर्श के साथ ही संघर्ष भी होता रहता है। अर्थात् ध्वनि उच्चारण के प्रारंभिक चरण में स्पर्श होता है तथा अंतिम चरण में संघर्ष होता है। इसलिए इन को स्पर्श संघर्षी कहा जाता है। हिंदी में च, छ, ज, झ इसी प्रकार की ध्वनियाँ हैं।

● **नासिक्य** :- इन ध्वनियों के उच्चारण में मुख-विवर अवरूध्द हो जाता है और हवा नाक से निकलती है। ड, ज, न, म नासिक्य व्यंजन हैं।

● **पार्श्विक** :- इस प्रकार की ध्वनियों के उच्चारण में मुख विवर बीच में कहीं एक स्थान पर अवरूध्द हो जाता है किन्तु हवा जिव्हा के एक या दोनों पाश्वों से निकलती रहती है। हिंदी में `ल` इसी प्रकार की ध्वनि है।

● **उत्क्षिप्त** :- इस प्रकार की ध्वनियों के उच्चारण में जिव्हा ऊपर उठकर झटके से नीचे आती है। हिंदी में ड, ढ, इसी प्रकार के व्यंजन हैं।

● **कंपनजात** :- इस प्रकार की ध्वनियों के उच्चारण में जिव्हा की नोक में से वायु के प्रवाह से कंपन होता है। हिंदी में `र` इसी प्रकार की ध्वनि है।

● **संघर्षहीन सप्रवाह** :- इसमें हवा का प्रवाह तो चलता रहता है, किन्तु संघर्ष नहीं होता। ये ध्वनियाँ न तो पूरी तरह से स्वर होती हैं न व्यंजन। अतः इन्हें अर्धस्वर भी कहते हैं। हम इन्हें अर्ध व्यंजन भी कह सकते हैं। हिंदी में य, व इसी प्रकार की ध्वनियाँ हैं।

1) स्थान के आधार पर :-

पीछे हमने देखा कि सभी ध्वनियाँ किसी एक स्थान से उच्चारित नहीं होतीं। अर्थात् मुख विवर के विभिन्न स्थान ध्वनि उच्चारण में सहायक होते हैं। इसी आधार पर व्यंजनों को निम्नांकित वर्गों में बाँटा जा सकता है।

● **स्वर यंत्र मुखी** :- स्वरयंत्र - मुख से उच्चारित ध्वनियों को स्वर यंत्रमुखी ध्वनि कहा जाता है। हिंदी की अघोष `ह` ध्वनि स्वरयंत्र मुखी ध्वनि है।

● **उपालिजिव्हीय** :- जो ध्वनियाँ स्वरयंत्र और अलिजिव्हीय बीच उत्पन्न होती हैं, उपालिजिव्हीय ध्वनियाँ कहलाती हैं। अरबी की बड़ी `हे` और `ऐन` इसी स्थान से उच्चारित होती है।

● **अलिजिव्हीय** :- जब जिव्हा का पश्चय भाग अलिजिव्हा के पार्श्व प्रदेश के संपर्क में आकर वायु प्रवाह को अवरूध्द करता है। तब अलिजिव्हीय ध्वनियाँ उच्चारित होती हैं। अरबी से प्रभावित हिंदी में आई क, ख, ग ध्वनियाँ अलिजिव्हीय हैं।

● **कोमल तालव्य** :- जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिव्हा का पश्चय भाग कोमल तालु के पास आकर वायु को अवरूध्द करके निकलती है तब वे कोमल तालव्य ध्वनियाँ कहलाती हैं। हिंदी की क, ख, ग, घ, ड आदि इसी प्रकार की ध्वनियाँ हैं।

● **मूर्धन्य** :- जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिव्हा का अग्रभाग उलटकर मूर्धा को स्पर्श करता है तब उन ध्वनियों को मूर्धन्य कहा जाता है। किन्तु वस्तुतः `ट` वर्ग की ध्वनियों का उच्चारण स्थान काफी आगे खिसक आया है। अतः इन्हें पूर्व तालव्य या कठोर तालव्य कहना चाहिए।

● **कठोर तालव्य** :- जब ध्वनियों के उच्चारण में जिव्हा का अग्र भाग कठोर तालु को स्पर्श करके निर्गत वायु को अवरूध्द करता है तब उच्चरित ध्वनियाँ कठोर तालव्य ध्वनियाँ कहलाती हैं। हिंदी की च, छ, ज, झ कठोर तालव्य ध्वनियाँ हैं।

● **वर्त्स** :- जब ध्वनियों के उच्चारण में जिव्हा नोक वर्त्स का स्पर्श करती है तब उच्चारित ध्वनियाँ वर्त्स ध्वनियाँ कहलाती है। हिंदी की न, ल, इ, स इस प्रकार की ध्वनियाँ हैं।

● **दन्त्य** :- जिन ध्वनियों का उच्चारण जिव्हा नोक तथा दाँतों की सहायता से किया जाता है उन्हें दन्त्य ध्वनियाँ कहा जाता है। हिंदी की त, थ, द, ध इसी प्रकार की ध्वनियाँ हैं।

● **दन्त्योष्ठ** :- ऐसी ध्वनियाँ जिनका उच्चारण ऊपर के दाँत और नीचे के ओंठ की सहायता से होता है। तब वे ध्वनियाँ दन्त्योष्ठ्य ध्वनियाँ कहलाती हैं। फ और व ऐसी ही ध्वनियाँ हैं।

● **ओष्ठ्य :-** जिन ध्वनियों का उच्चारण दोनों ओठों की सहायता से होता है वे ध्वनियाँ ओष्ठ्य ध्वनियाँ कहलाती हैं। हिंदी की प, फ, ब, भ, म इसी प्रकार की ध्वनियाँ हैं।

3) स्वर-तंत्रियों के आधार पर :-

स्वरतंत्रियों के आधार पर व्यंजनों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। 1) घोष 2) अघोष

● **घोष :-** जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में स्वर तंत्रियों के निकट आ जाने से उसके बीच से निकलती हवा से उन में कंपन होता है। तब वे व्यंजन ध्वनियाँ घोष कहलाती हैं। हिंदी के पाँच वर्गों में प्रत्येक की तीन अंतिम ध्वनियाँ हैं। जैसे - ग, घ, ड, ज, ञ आदि। तथा य, र, ल, व, ज, ग, ह, ड, ढ़ आदि घोष ध्वनियाँ हैं।

● **अघोष :-** जिन ध्वनियों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपन नहीं होता। वे निष्क्रिय रहती हैं। तब उच्चारित ध्वनियाँ अघोष ध्वनियाँ कहलाती हैं। हिंदी में पाँच वर्ग की प्रथम दो ध्वनियाँ क, ख, फ, स, श आदि अघोष हैं।

4) प्राणत्व के आधार पर :-

प्राणत्व का अर्थ है हवा की शक्ति। अर्थात् किसी ध्वनि उच्चारण में कितनी हवा की शक्ति लगती है। इस आधार पर व्यंजन ध्वनियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। 1) अल्पप्राण, 2) महाप्राण।

● **अल्पप्राण :-** जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में हवा की शक्तिअल्प या कम मात्रा में होती है उन्हें अल्पप्राण ध्वनियाँ कहते हैं। हिंदी के पाँचों वर्गों में पहली, तीसरी और पाँचवी ध्वनियाँ अल्पप्राण हैं। जैसे - क, ग, ङ, च, ज, ञ आदि।

● **महाप्राण :-** जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में हवा की शक्ति अधिक मात्रा में लगती है तब उन्हें महाप्राण कहते हैं। हिंदी के वर्गों में से प्रत्येक वर्ग की दूसरी और चौथी ध्वनियाँ महाप्राण हैं। जैसे - ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, ध आदि।

5) उच्चारण शक्ति के आधार पर :-

ध्वनियों के उच्चारण में मुँह की मांस पेशियों में दृढ़ता एवं शिथिलता आ जाती है। इस आधार पर व्यंजन ध्वनियों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है।

● **सशक्त :-** जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में मुँह की मांसपेशियाँ दृढ़ हो जाती है तब वे व्यंजन ध्वनियाँ सशक्त कहलाती हैं। जैसे - स, ट आदि।

● **अशक्त :-** जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में मुँह की मांसपेशियाँ शिथिल होती हैं तब वे उच्चारित व्यंजन ध्वनियाँ अशक्त कहलाती हैं। जैसे - र, ह आदि।

● **मध्यम :-** जब ध्वनि उच्चारण में मांस पेशियाँ न तो पूरी तरह से दृढ़ होती हैं न पूरी तरह से शिथिल होती हैं। ऐसी स्थिति में उच्चारित व्यंजन ध्वनियाँ मध्यम कहलाती हैं। जैसे - च, श आदि।

6) अनुनासिकता के आधार पर :-

अनुनासिकता के आधार पर व्यंजन ध्वनियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है।

● **मौखिक-नासिक्य :-** जिन ध्वनियों के उच्चारण में हवा मुख विवर के साथ नाक से भी निकलती है, तब उन्हें मौखिक नासिक्य कहा जाता है। जैसे - कँ, एँ आदि।

● **नासिक्य :-** जिन ध्वनियों के उच्चारण में हवा मुख्यतः नाक से निकलती है, उन्हें नासिक्य कहा जाता है। जैसे - म, न, ञ, ड़ आदि।

7) संयुक्तता-असंयुक्तता के आधार पर :-

इस आधार पर व्यंजन ध्वनियों को असंयुक्त और संयुक्त इन दो भेदों में बाँटा जा सकता है।

● **असंयुक्त :-** असंयुक्त में एक व्यंजन स्वतंत्र रूप से होता है। जैसे - क, ख, ग, प, फ आदि।

● **संयुक्त :-** दो या अधिक व्यंजनों के मिलने से संयुक्त व्यंजनों का रूप बनता है। जैसे - कट, लय, न्ह आदि।

ध्वनि गुण (Sound Quality):-

भाषा का आधार `ध्वनि` है और ध्वनि से आशय प्राय: स्वर और व्यंजन का लिया जाता है। किन्तु भाषा केवल स्वर और व्यंजन का ही योग नहीं है। वास्तव में स्वर और व्यंजन के अतिरिक्त भी भाषा में कुछ ऐसी भी तत्त्व होते हैं जो भाषा को मूर्त रूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। अर्थात् भाषा को मूर्त-रूप प्रदान करने में स्वर और व्यंजन के साथ-साथ मात्रा, सुर-बलाघात आदि भी महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। अपितु यह तीनों तत्त्व स्वर और व्यंजन पर ही आधारित होते हैं। भाषा को मूर्त-रूप प्रदान करनेवाले तत्त्वों को ही भाषा वैज्ञानिकों ने `ध्वनि गुण` के नाम से अभिहित किया है। सुर और बलाघात इन दोनों को एक नाम `आघात` से भी अभिनिहित करते हैं। अतः `ध्वनि गुण` के अन्तर्गत प्रमुखतः ये ही दो- मात्रा और आघात आते हैं।

अ) मात्रा :- `ध्वनि` के उच्चारण में जो समय लगता है उसे मात्रा कहते हैं। प्रत्येक ध्वनि के उच्चार में एक सा समय नहीं लगता। किसी ध्वनि के उच्चारण में कम समय लगता है तो किसी ध्वनि के उच्चारण में अधिक समय लगता है। उसी तरह किसी ध्वनि के उच्चारण में बहुत कम समय लगता है तो किसी के उच्चारण में बहुत अधिक समय लगता है। इसी आधार पर मात्रा के मुख्य रूप से तीन भाग किये जा सकते हैं - ऱ्हस्व, दीर्घ और प्लुत। अर्थात् ऱ्हस्व ध्वनि के उच्चारण में जो समय लगता है, उस के दुगुना दीर्घ में और प्लुत में तिगुना समय लगता है। मात्रा स्वर, अर्धस्वर और व्यंजन सभी की होती है।

ब) आघात :- हिंदी में आघात के लिए बल, स्वर, स्वराघात, बलात्म आदि का भी प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी इसके लिए `ऐक्सेंट` शब्द मिलता है। ऐक्सेंट शब्द भाषा विज्ञान में तीन अर्थों में मिलता है। कुछ भाषा वैज्ञानिक इसे बहुत विस्तृत अर्थ में लेते हैं। उनके मतानुसार इसमें मात्रा, सुर, लहर, बलाघात, ध्वनि प्रक्रिया तथा ध्वनि प्रकृत का समावेश होता है।

1) **बलाघात** :- बोलते समय प्राय: हम ऐसा देखते हैं कि वाक्य के सभी अंशों पर बराबर बल या जोर नहीं दिया जाता। कभी वाक्य के एक शब्द पर बल अधिक होता है तो कभी दूसरे पर। इस बल या आघात को `बलाघात` कहते हैं।
2) **सुर** :- सुर के लिए तान, लय या स्वर लहर भी कहते हैं। जिस प्रकार बलाघात में सभी ध्वनियाँ बराबर बल से नहीं बोली जाती, उसी प्रकार वाक्य की सभी ध्वनियाँ हमेशा एक सुर से नहीं उच्चरित होती। उनका सुर ऊँचा-नीचा होता है। उदाहरणार्थ यदि हम किसी वाक्य को एक सुर में ही कहें तो उसका अर्थ केवल जानकारी देना होगा। परंतु पूर्ण वाक्य में इसी सुर को ऊँचा-नीचा करके कहा जाए तो कभी वह वाक्य प्रश्नसूचक लगेगा तो कभी आश्चर्यकारक लगेगा। परंतु सुर केवल घोष ध्वनियों में ही होता है अघोष में नहीं।

सामान्यतः सुर के तीन भेद होते हैं - उच्च, सम और निम्न। वैदिक संस्कृत में इन्हें ही उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहा जाता है।

पद (रूप) विज्ञान

➢ पद या शब्द :-

भाषा वाक्यों का समूह है। वाक्य शब्दों का समूह है। शब्द ध्वनियों का समूह है। उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुत्तम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द। जब शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने लायक बन जाते हैं तब वे पद कहलाते हैं।

शब्द और पद में अन्तर है। सार्थक ध्वनि समूहों को शब्द कहा जा सकता है तो वाक्य में प्रयुक्त मूल अथवा विकृत शब्द को पद कहते हैं।

कोश में हजारों शब्द होते हैं, किन्तु हम उनका प्रयोग भाषा में वैसे ही नहीं करते। उनमें कुछ परिवर्तन करते हैं। उदाहरणार्थ कोश का शब्द, सोचता, सोचती, सोचते, सोचा, सोची, सोचे, सोचूँगा, सोचूँगी, सोचेंगे आदि का प्रयोग करते हैं। शब्द के यह परिवर्तित रूप ही पद कहलाते हैं। शब्द और पद का भेदक तत्त्व प्रत्यय या विभक्तियाँ हैं।

अत: हम कह सकते हैं कि शब्द प्रत्यय रहित होते और पद प्रत्यय सहित होते हैं, या प्रत्यय युक्त होते हैं। प्रत्यय योग से ही शब्दों में प्रयोग क्षमता आती है और वाक्य का अर्थ भी स्पष्ट होता है। केवल शब्दों से वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ - हमने एक वाक्य इस प्रकार लिखा - राम रावण मारना। यहाँ वाक्य के लिए आवश्यक कर्ता, कर्म, क्रिया सभी विद्यमान है, परंतु इससे कोई अर्थ प्रकट नहीं होता। इसे यदि इस प्रकार लिखा जाए - राम ने रावण को मारा तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है। उपर्युक्त वाक्य में आए राम, रावण, मारना यह अर्थतत्त्व है और ने, को, आ यह संबंध तत्त्व है इन्हें ही प्रत्यय भी कहते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अर्थ तत्त्व में संबंध तत्त्व के योग से पद की निष्पत्ति होती है।

➢ अर्थतत्त्व और संबंध तत्त्व :-

वाक्य में दो प्रमुख तत्त्व होते हैं - अर्थ तत्त्व और संबंध तत्त्व।

मूल शब्द और पद में यह अन्तर होता है कि मूल शब्द में वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता नहीं होती। तथा `पद` में प्रत्यय या संबंध तत्त्व जोड़ने के कारण शब्द में वाक्य प्रयुक्त होने की योग्यता आ जाती है।

वाक्य में जो मूल शब्द होते हैं उन्हें अर्थतत्त्व कहते हैं और शब्दों का वाक्य में एक दूसरे से संबंध दर्शानेवाले तत्त्व को संबंध तत्त्व कहते हैं। अर्थात् संबंध तत्त्व विभिन्न अर्थतत्त्वों का आपस में संबंध दिखाता है। उदाहरणार्थ - मोहन ने पेड़ की छाया में बिस्तर बिछा दिया। इस वाक्य में मोहन, पेड़, छाया, बिस्तर दिया यह पाँच अर्थतत्त्व हैं। उसी तरह ने, की, मैं, देने से दिया यह संबंधतत्त्व है। अर्थात् - मूलशब्द + संबंधतत्त्व = पद या रूप।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संबंध तत्त्व के योग से ही अर्थतत्त्व में निहित अर्थ स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगता है। दूसरी बात यह है कि उपर्युक्त वाक्य में दो प्रकार के संबंध तत्त्व देखने को मिले। जैसे (मोहन ने) यहाँ `ने` यह संबंध अर्थतत्त्व से अलग है। दूसरी ओर एक ऐसा भी संबंध तत्त्व है जो अर्थतत्त्व

में घुलमिल गया है जैसे (बिछा) यह है। अर्थात् संबंध तत्त्व भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। यहाँ हम उन्हीं संबंध तत्त्व के प्रकारों के संबंध में विचार विमर्श करेगा। जिससे अर्थ बदल जाता है।

➢ संबंध तत्त्व के प्रकार :-

हमने पीछे देखा कि संबंध तत्त्व पदों के निर्माण में सहायक होते हैं। यहाँ हमें दो प्रकार के संबंध तत्त्व पदों के निर्माण में सहायक होते हैं। यहाँ हमें दो प्रकार के संबंध तत्त्व दिखाई दिए, एक तो वह संबंध तत्त्व जो शब्दों से अलग होते हैं जैसे `राम ने रावण को मारा।` इस वाक्य में `राम ने` यहाँ `ने` यह अलग है और दूसरी और एक ऐसा संबंध तत्त्व है जो शब्द में घुल-मिल गया है जैसे - `मारा`। ठीक इसी प्रकार कुछ और तरह के भी संबंध तत्त्व होते हैं। नीचे सभी प्रकार के संबंध तत्त्वों पर अलग-अलग विचार किया जा रहा है।

1) स्वतंत्र शब्द :- संसार की अनेक भाषाएँ ऐसी हैं, जिनमें स्वतंत्र शब्द संबंध तत्त्व का काम करते हैं। जैसे हिंदी के सारे परसर्ग या कारक चिन्ह (ने, को, से, पर, में, का, की, के) इसी वर्ग के है। यह संबंध तत्त्व दो या अधिक शब्दों का वाक्य या शब्द समूह से संबंध दिखाते हैं।

कभी-कभी दो स्वतंत्र शब्द का भी प्रयोग संबंध तत्त्व के लिए होता है। जैसे हिंदी में `जहाँ-वहाँ`, `अगर तो` आदि उदाहरण `जहाँ बुरे लोग होते हैं वहाँ अच्छे लोग नहीं बैठते।`

2) शब्द स्थान :- कभी-कभी शब्दों का स्थान भी संबंध तत्त्व का कार्य करता है। संस्कृत और हिंदी में समस्त पदों में समासों में यह बात प्रायः देखी जाती है।

उदाहरण :-	धनपती	-	धन का पति (कुबेर)
	पतिधन	-	पति (शौहर) का धन
	राजसदन	-	राजा का घर
	सदनराज	-	घरों का राजा
	ग्राममल्ल	-	गाँव का पहलवान
	मल्लग्राम	-	पहलवानों का ग्राम

वाक्यों में भी स्थान-परिवर्तन के कारण संबंध तत्त्व में अन्तर आ जाता है।

हिंदी में	-	आदमी शेर देख रहा है।
		शेर आदमी देख रहा है।
अंग्रेजी में	-	Mohan killed Ram.
		Ram killed Mohan.

उपर्युक्त उदाहरणों में यह बात स्पष्ट होती है कि स्थान परिवर्तन से संबंध तत्त्व में अंतर आ गया है और अर्थ बदल जाता है।

3) शून्य संबंध तत्त्व :- कभी-कभी बाहरी तौर पर कोई भी संबंध तत्त्व न लगाकर शब्दों को ज्यों का त्यों छोड़ देना ही संबंध तत्त्व का बोधक होता है। शून्य संबंध तत्त्व के योग से भी अर्थ में अंतर आ जाता है। उदाहरण - हिंदी के अविष्कारी ईकारान्त पुल्लिंग शब्दों को देख सकते हैं। इन का बाहरी रूप एकवचन और बहुवचन में एक समान रहता है।

उदा. हाथी दौड़ पड़ा।
हाथी दौड़ पड़े।

4) ध्वनि प्रतिस्थापन :- इसके अन्तर्गत तीन उपभेद कर सकते हैं। 1) स्वर-प्रतिस्थापन 2) व्यंजन-प्रतिस्थापन 3) स्वर व्यंजन-प्रतिस्थापन।

कभी-कभी केवल स्वरों में परिवर्तन से संबंध तत्त्व प्रकट किया जाता है। जैसे - पुत्र- पौत्र, मामा-मामी, अंग्रेजी में Sing-Sang-Sung, Find-Found आदि इसी प्रकार बनते हैं।

उसी प्रकार व्यंजन-प्रतिस्थापन में Send-Sent देखे जा सकते हैं।

5) ध्वनि-द्विरावृत्ति :- कुछ ध्वनियों की पुनरावृत्ति से भी कभी-कभी संबंध तत्त्व का काम लिया जाता है। यह पुनरावृत्ति मूल शब्द के आदि, मध्य और अन्त और स्थानों पर पाई जाती है। उदाहरण - लंका की एक बोली में Manao यानी चाहना और Manao-nao यानी वे चाहते हैं। हिंदी में भी पुनरावृत्ति के उदाहरण है परंतु यह पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। जैसे - दे-दे, ले-ले आदि।

6) ध्वनि वियोजन :- कभी-कभी कुछ ध्वनियों को घटा कर या कर देने से संबंध तत्त्व का काम लिया जाता है। फ्रांसीसी भाषा के कुछ उदाहरण है, देखिए - Petite स्त्रीलिंग - Petit पुल्लिंग। परंतु इस प्रकार के उदाहरण कम देखने को मिलते हैं।

7) ध्वनिगुण (बलाघात) :-

बलाघात तथा सुर भी संबंध तत्त्व का काम करते हैं। सुर के उदाहरण चीनी तथा अफ्रीका की भाषाओं में मिलते हैं। अफ्रिका की `फुल भाषा` का उदाहरण देखिए। इस में `मिरवत` यदि एक सुर में कहा जाये तो अर्थ होगा `मैं मार डालूँगा` ! पर यदि `त` का सुर उच्च होगा तो अर्थ होगा - `मैं नहीं मारूँगा`। बलाघात के उदाहरण अंग्रेजी में मिलते हैं। अंग्रेजी में Conduct में यदि `क` पर बलाघात होगा तो यह शब्द संज्ञा होगा, पर यदि `ड` पर होगा तो क्रिया।

वाक्य विज्ञान

सामान्यतः शब्दों के उस समूह को वाक्य कहते हैं जिसे वक्ता या लेखक का अभिप्राय पूर्ण रूप से प्रकट हो। भाषा वाक्यों का समूह है अर्थात्, वाक्य यह भाषा की इकाई है। इसके बाद पद, शब्द और ध्वनि आ जाते हैं। इसलिए भाषा विज्ञान में वाक्य विचार का विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है।

भाषा का प्रमुख कार्य विचारों की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति मनुष्य वाक्य के माध्यम से ही करता है। अर्थात् मनुष्य का सोचना, समझना और बोलना वाक्यों में ही होता है। बिना वाक्य से विचारों की अभिव्यक्ति संभव नहीं हो सकती। वाक्य शब्दों के समूह से बनते हैं। दूसरी बात वाक्य यह एक शब्द के भी होते हैं और अनेक शब्दों के भी। उदाहरणार्थ - आ, खा, जा, बैठ, उठ, इत्यादि उसी तरह तुम इधर जाओ। यह खाना मत खाओ। यहाँ आकर बैठो। किन्तु एक शब्द से अपने भावों के विचारों को पूरी तरह से ठीक तरह से अभिव्यक्त करना कठिन कार्य है।

अतः हम कह सकते हैं कि वाक्य भाषा की महत्त्वपूर्ण इकाई है। वाक्य सार्थक पदों का वह समूह होता है जिसके द्वारा हम अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं। वाक्य का शास्त्रीय विश्लेषण जिस विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है उसे वाक्य विज्ञान कहा जाता है। वाक्य विज्ञान को अर्थात् वाक्य ठीक तरह से समझने के लिए हमें वाक्य की परिभाषा को जान लेना अधिक समीचीन होगा।

➢ वाक्य की परिभाषा :-

डॉ. भोलानाथ तिवारी वाक्य की परिभाषा करते हुए लिखते हैं, ``वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है जिसमें एक या अधिक शब्द (पद) होते हैं तथा जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण, व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है, साथ ही उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कम से कम एक समापिका क्रिया अवश्य होती है।``

1) वाक्य शब्दों का समूह है।
2) वाक्य भाषा की लघुत्तम पूर्ण स्वतंत्र इकाई है जो विचार की ध्वनिमयी सार्थक अभिव्यक्ति है।
3) वाक्य एक या अधिक शब्दों की वह इकाई है जो संदर्भ विशेष में व्याकरणीय दृष्टि से पूर्ण हो।
4) व्याकरणिक दृष्टि से लघुत्तम पूर्ण कथन या भाषांश वाक्य है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वाक्य भाषा की इकाई है जो अर्थ और व्याकरणिक दृष्टि से अपने आपमें पूर्ण होती हैं।

➢ वाक्य की आवश्यकताएँ :-

वाक्य के संदर्भ में हमने पीछे कुछ बातों का अध्ययन किया, किन्तु केवल वाक्य के अर्थ और उसकी परिभाषा जान लेने से वाक्य का स्वरूप ज्ञात नहीं होता। अतः वाक्य को उसके स्वरूप को पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें उसकी आवश्यकताएँ अर्थात् वाक्य के गुण उसके तत्त्वों को जान लेना अधिक समीचीन होगा। अर्थात् वाक्य के गुण उसके तत्त्वों को जान लेना अधिक समीचीन होगा। अर्थात् हमें यह जान लेना आवश्यक हो जाता है कि वह कौन से तत्त्व होते हैं जिनके द्वारा वाक्य बनता है। केवल कर्ता, कर्म, क्रिया इनके एकत्रित होने से वाक्य सार्थक नहीं होता। उसमें कुछ और तत्त्वों की गुणों की आवश्यकता होती है। भारतीय दृष्टि से वाक्य के लिए पाँच बातों को अनिवार्य माना है। वे निम्नांकित हैं :-

1) सार्थकता :- हमने पीछे ही देखा कि `वाक्य सार्थक शब्दों का समूह होता है। अर्थात् वाक्य में केवल सार्थक शब्द ही आते हैं। उसमें निरर्थक शब्द नहीं होना चाहिए।` निरर्थक शब्दों से वाक्य संपन्न नहीं होता। उसी तरह निरर्थक शब्दों के वाक्य से पूर्ण अर्थ की प्रतीति नहीं होती। उदा. - `जे खादा तोस मू पता नहीं।` इस वाक्य में `जे खादा तोस मू` यह शब्द निरर्थक है। इनसे किसी तरह का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अर्थात् पूर्ण वाक्य ही सार्थक होना चाहिए।

2) योग्यता : योग्यता से तात्पर्य यह है कि वाक्य के शब्दों में अपने भाव या विचारों को वहन करने की योग्यता होना चाहिए। अर्थात् शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव को बोध कराने की योग्यता या क्षमता होनी चाहिए। उदा.- हमने किसी से कहा कि `आप यह आम पी लो।` अतः यह भाव के अनुसार शब्दों में परस्पर योग्यता का अभाव दिखाई पड़ता है। क्योंकि आम इस फल को पीया नहीं खाया जाता है। अतः हमें कहना चाहिए कि `आप यह आम खा लो`, या `आप यह आम खाईए।` अर्थात् वाक्य के शब्दों में, उनके अर्थ में परस्पर योग्यता होनी चाहिए।

3) आकांक्षा :- आकांक्षा का अर्थ है इच्छा, जिज्ञासा। वाक्य में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह पूरा अर्थ दे। अर्थात् वक्ता जो कुछ बात कहे वह बिल्कुल साफ-साफ होनी चाहिए। उसे सुनने के बाद श्रोता में किसी भाव को समझने के लिए कुछ जानने की आकांक्षा न रहे। उदा. - किसी ने केवल प्रधानमंत्री.... इतना कहा और वह रूक गया तो `प्रधानमंत्री इस शब्द को बोलने से जिज्ञासा जैसे प्रधानमंत्री का क्या हुआ,

प्रधानमंत्री कहाँ गए ? क्या वे हमारे गाँव में आए हुए हैं या प्रधानमंत्री ने इस्तीफा दे दिया इत्यादि प्रश्न हमारे सामने आते हैं। इन सारे प्रश्नों का समाधान के `प्रधानमंत्री` इस शब्द से नहीं होता। अर्थात् वक्ता की बात ऐसी होनी चाहिए जिसे सुनने के बाद श्रोता के मन में किसी प्रकार की शंका, आकांक्षा बनी न रहे।

4) सन्निधि :- सन्निधि का अर्थ है समीपता। वाक्य के शब्द समीप होने चाहिए। अर्थात् वाक्य के पदों का एक दूसरे के समीप होना आवश्यक होता है। उपर्युक्त तीनों बातों के होने पर भी वाक्य इस `सन्निधि` के अभाव में अर्थ नहीं दे सकता। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि पदों की सन्निधि का अर्थ है पदों का उच्चारण लगातार हो। यदि वक्ता ने एक शब्द अभी कहा और दूसरा एक घंटे बाद और अंतिम शब्द दो घंटे बाद कहे तो यह वाक्य नहीं बनेगा। न ही उससे किसी तरह का अर्थ भी स्पष्ट होगा। इसके लिए किसी भी तरह का वाक्य बोलते समय शब्दों का उच्चारण एक साथ अर्थात् लगातार होना चाहिए। इससे अर्थ ग्रहण करने में अधिक आसानी होती है।

5) अन्विति :- अन्विति का अर्थ अन्वय और अन्वय का अर्थ व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता। अर्थात् वाक्य के पदों में लिंग, वचन, कारक, पुरूष आदि की दृष्टि से एकरूपता होना अनिवार्य है। हिंदी में क्रिया प्रायः लिंग, वचन, पुरूष में कर्ता के अनुकूल होती है। `राधा सो गया` न तो ठीक वाक्य है और न `कृष्ण चली गई` है क्योंकि यहाँ राधा और गया में अन्विति है और कृष्ण और चली गयी में। अर्थात् वाक्य में शब्दों में व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता होनी चाहिए। जैसे उपर्युक्त वाक्य में `राधा सो गयी` और `कृष्ण चला गया` या `कृष्ण चले गए।` इस प्रकार होना चाहिए था। तब ही वे ठीक और सार्थक लगेंगे।

इस प्रकार वाक्य में जहाँ सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि और अन्विति आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं, वहाँ वाक्य सार्थक और सफल होता है।

➢ वाक्य में पदक्रम :-

पदक्रम का अर्थ है वाक्य में पदों के क्रम का निर्धारण। प्रत्येक भाषा का वाक्य में अपना विशिष्ट पदक्रम होता है। यदि उसमें हेर-फेर हो तो वाक्य अपनी सार्थकता खो देता है। हिंदी में कर्ता, कर्म और क्रिया इस क्रम से आती है। अर्थात् हिंदी में वाक्य में पहले कर्ता आता है फिर कर्म और क्रिया वाक्य के अंत में आती है जैसे `राम ने रावण को मार डाला।` परंतु अंग्रेजी भाषा में इसके विपरीत होता है अर्थात् अंग्रेजी वाक्य में क्रिया बीच में आती है तथा कर्म अन्त में आता है जैसे उपर्युक्त वाक्य ही अंग्रेजी में Ram killed Ravan इस प्रकार आयेगा। यहाँ तो केवल शब्द के क्रम को इतना महत्त्व होता है कि केवल इन शब्दों (पदों) का क्रम बदल दें तो पूर्ण वाक्य का अर्थ ही बदल जाएगा। उदा. - उपर्युक्त वाक्य में केवल पदक्रम बदल कर देखे Ravam killed Ram तो पूरे वाक्य का अर्थ ही बदल जाता है।

किन्तु कुछ भाषाएँ ऐसी होती हैं जिनमें पदक्रम को इतना महत्त्व नहीं दिया जाता हैं। संस्कृत में पदक्रम के नियम नहीं है। उदा. संस्कृत का वाक्य `राम` पुस्तक पठति, या पुस्तकं पठति रामः। या पठति रामः पुस्तकम्। चाहे जैसे भी पदों का क्रम रखिए। अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होगा। परंतु हिंदी भाषा के वाक्य में पदक्रम को अधिक महत्त्व है केवल पदों के क्रम बदलने से यहाँ पूरा अर्थ बदल जाता है।

➢ वाक्य विभाजन :-

वाक्य के स्वरूप और उसकी रचना को समझने के लिए वाक्य विभाजन को समझ लेना आवश्यक हो जाता है। छोटे-छोटे वाक्यों से अर्थबोध जल्दी होता है। इसलिए यदि लंबे-लंबे वाक्य का

विभाजन कर दें तो उस वाक्य के लिए वाक्य का विभाजन कर सकते हैं। वाक्य विभाजन के तीन आधार प्रचलित हैं। अ) अग्र-पश्च, आ) उद्देश्य और विधेय तथा इ) उपवाक्यीय। इन्हें ठीक तरह समझने के लिए यहाँ हम उनका संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

अ) अग्र-पश्च :- सामान्यतः वाक्य के दो अंश होते हैं। एक आगे का और दूसरा पीछे का। इन्हें ही क्रमशः वाक्य का अग्र भाग और वाक्य का पश्च भाग कहते है। उदा. - मोहन सो गया। इस वाक्य में `मोहन` यह अग्र भाग है और `सो गया` यह पश्च भाग है। सामान्यतः बोलचाल के वाक्य अपेक्षाकृत छोटे होते हैं, जबकि लेखन में प्रयुक्त वाक्य प्रायः बड़े होते हैं और बाद का हिस्सा यह पश्च। परंतु कभी-कभी हम बोलते समय वाक्य के कुछ अंशों को दुहराते हैं। इससे पहले वाक्य का आधा भाग या कुछ भाग पुनः दूसरे वाक्य में आ जाता है। ऐसी स्थिति में प्रायः एक वाक्य का पश्च दूसरे वाक्य में आ जाता है। ऐसी स्थिति में प्रायः एक वाक्य का पश्च दूसरे वाक्य का अग्र बन जाता है। उदा. `मोहन तुम पढ़ाई करो।` पढ़ाई करने से हो सकता है अच्छे अंक मिलें। अच्छे अंक मिलने से संभव है तुम्हें अच्छी नौकरी मिले। अच्छी नौकरी मिलने से तुम्हें आमदनी मिलेगी इत्यादि। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वाक्य के पहले भाग को अग्र और बाद वाले को पश्च कहते हैं।

आ) उद्देश्य-विधेय : वाक्य में कर्ता और क्रिया दो आवश्यक अंग होते हैं। उदा. - `मोहन जाता है।`, `वह खा रहा है।`, `श्याम अभी आया।` इन वाक्यों में `मोहन`, `वह` और `श्याम` कर्ता हैं तथा `जाता`, `खा` और `आया` यह क्रिया है। कर्ता को ही उद्देश्य (कर्ता) के साथ उसका विस्तार भी रहता है। उसे उद्देश्य का विस्तार कहते हैं। उदा. - राम का लड़का गया। यहाँ उद्देश्य होगा `राम का लड़का` उसे ही उद्देश्य का विस्तार कहते हैं। इसी प्रकार वाक्य में विधेय के साथ भी विस्तार होता है उसे विधेय (क्रिया) का विस्तार कहते हैं। उदा. - मोहन गया और मोहन घर गया। इसमें `घर गया` यहाँ क्रिया का विस्तार हुआ है। इसे ही विधेय का विस्तार कहते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वाक्य का वह अंग अथवा अंश जिसके बारे में वाक्य के शेषांश में कुछ कहा गया हो उसे उद्देश्य कहते हैं तथा जो अंश उद्देश्य के बारे में सूचना दे उसे विधेय कहते हैं।

इ) उपवाक्यीय :- जब कोई वाक्य एक से अधिक वाक्य से मिलकर बनता है तब वह बड़ा या मुख्य वाक्य कहलाता है, और जिन छोटे वाक्यों से मिलकर मुख्य वाक्य बनता है तब वह छोटे वाक्य मुख्य वाक्य के उपवाक्य कहलाते हैं। जैसे -`जब वह आया तो गाड़ी जा चुकी थी।` इस वाक्य में पूरा वाक्य यह मुख्य वाक्य है तथा `जब वह आया और गाड़ी जा चुकी थी` दोनों मुख्य वाक्य के उपवाक्य है। इन दोनों वाक्यों में `उद्देश्य` भी है और विधेय भी। उपवाक्य के सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं।

1) प्रधान या प्रमुख उपवाक्य
2) आश्रित उपवाक्य

जो उपवाक्य वाक्य में प्रमुख या प्रधान हो और किसी दूसरे वाक्य पर आश्रित न हो तो उसे प्रधान उपवाक्य कहते हैं। ऊपर के वाक्य में `गाड़ी जा चुकी थी` यह प्रमुख उपवाक्य है।

आश्रित उपवाक्य उसे कहते हैं जो वाक्य में प्रमुख न हो, परंतु प्रमुख उपवाक्य पर आश्रित हो। ऊपर के वाक्य में `जब वह आया` प्रमुख वाक्य नहीं है किन्तु गाड़ी जाने का समय बता रहा है अर्थात् यह दूसरे वाक्य पर आश्रित है। इसे ही आश्रित उपवाक्य कहते हैं।